International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746
Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 68-69

वैदिक नीति का आधारभूत तत्व : ऋत

डॉ० मंजू सिंह
Principal, Jagraut Women College, Kherla Bujurg affiliated to Rajasthan University Jaipur, Rajasthan, India

प्रस्तावना

वैदिक सम्पूर्ण जगत क्षणभंगुर है, अतः इस जगत में व्याप्त समस्त वस्तुएँ परिवर्तनशील तथा अस्थिर है। अनादिकाल से लेकर आधुनिक काल के भारतीय तथा पाश्चात्य दार्शनिकों ने यह स्वीकार किया है कि इस जगत में कोई भी वस्तु स्थिर नही है। भारतीय विद्वान जो जगत् की उत्पति को ईश्वरीय (नियम) कार्य द्वारा सम्पादित मानते है वहीं पश्चिमी विचारक इसे जैवीय क्रिया प्रणाली द्वारा स्वीकार करते है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी सृष्टि अणुओं के संघात से होती है। डार्विन ने जीवनशास्त्रीय नियमों के आधार पर जीवन व जगत की उत्पति की व्याख्या की। जेनोफेनिज भी डार्विन के मत से सहमत था। परमाणुवादियों ने जगत की उत्पत्ति को परमाणुओं के संघर्ष के माना। जीनो मानता था कि प्रकृति की समस्त घटनाएँ निरपवाद रूप से प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित होती है किन्तु जगत में आकस्मिकता अथवा संयोग का कोई स्थान नहीं है।[1] हीगल के अनुसार एक विश्वव्यापी आत्मा अथवा ईश्वर विचार ही अपने आप को विश्व के विकास में अभिव्यक्त कर रहा है। वह जड़ जगत में सुप्तावस्था, वनस्पति जगत में अर्धचेतनावस्था तथा प्राणियों में चेतनावस्था में है तथा वहीं मनुष्य में आत्म चेतन हो जाता है।[2] व्हाईटहेड के मतानुसार जगत वास्तविक तत्व की प्रक्रिया हैं और यही वास्तविक तत्व प्रक्रिया का परिवर्तित आकार रूप तथा सम्भावना शाश्वत वस्तु है। जैन दर्शानानुसार परमाणु के संघात से ही विश्व के सभी प्रकार की उत्पत्ति है। वर्तमान समय में विज्ञान भी यह स्वीकार कर चुका है कि विश्व की सुष्टि एवं प्रलय में अणुतत्व तथ द्रव्य के अतिरिक्त अन्य कोई परमतत्व या शक्तिरूप की निरपेक्ष या सापेक्ष रूप में कुढ न कुछ प्रक्रिया अवश्य रहती है।

इस प्रकार यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि कतिपय पाश्चात्य विचारक सृष्टि उत्पति में ईश्वरीय कार्य को प्रत्यक्ष तथ अप्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करते है तथापि विश्व की समस्त वस्तुएँ परिवर्तनशील तथ नश्वर है तो फिर नीतिसम्बन्धी जगद्विषयक नियम कैसे स्थिर रह सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि इस परिवर्तनशील अखिल ब्रहाण्ड में जड–चेतन रूप सभी वस्तुएँ चाहे उनमें समयानुसार परिवर्तन हो या प्रक्रिया वह किसी एक नियम का अंग अवश्य है जिससे कि विश्व की समस्त वस्तुएँ उसी नियम द्वारा संचालित होती है। वे नियम क्षणभंगुर न होकर शाश्वत है परन्तु अपने प्रकटीकरण के कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। वैदिक ऋत का सिद्धान्त स्वयं में एक अलौकिक एवं दार्शनिक गम्भीरतम अर्थो को समेटे हुए हैं जिसके साहचर्य से समस्त सृष्टि चक्र प्रवर्तित हो रहा हैं। 'ऋत'[3] शब्द की व्युत्पति 'ऋ' धातु से 'क्त' प्रत्यय के योग से हुई है।[4] इसका तात्पर्य 'नियम' या 'व्यवस्थित गति' है।

ऋत का स्वरूप

परब्रहा स्वरूपा ऋत समस्त लोको को व्याप्त किये हुए है। वह ही ऋत परमेश्वर का अटल विधान है जिसके साहचर्य से समस्त सृष्टि चक्र प्रवर्तित हो रहा है। वह अपने सत्य नियमो के द्वारा प्रकृति के समस्त पदार्थो अथवा तत्वों को नियमित गतिशील तथा व्यवस्थित बनाये है। इसी के कारण सूर्य, चन्द्रमा, उषा, ऋतुएँ, दिन–रात सभी नियमों के अनुरूप चलते है। प्रकृति के समान ही वैयक्तिक स्तर पर भी यह सभी प्राणियों के (जीवन तथा चरित) को नियंत्रित रखता है। अथर्ववेद में एक मंत्र में कहा गया है कि –

इन्द्र आदि देवता अविनाशी परम आनन्द का अनुभव करते हुए एकमात्र कारणभूत जिस ब्रह्म में अपनी आत्मा को प्रेरित करते है अर्थात उसमें एकीभूत हो जाते है और जिस ब्रह्म में मनोवृतियॉ के द्वारा साक्षत्कार करने पर अविनाशी परमानन्द को भोगती हुई इन्द्रियॉ साधारण कारणभूत ब्रह्म में लीन हो जाती है, उस सत्य ब्रह्म पट के तन्तु के समान जगत के कारण भूत व्याप्तस्वरूप ब्रह्म को देखने के लिए ज्ञानोत्पति से पहिले (मैं) कर्मफलभूत पृथिवी आदि समस्त लोकों को प्राप्त कर चुका हूँ।[5] तात्पर्य यह है इन्द्र आदि समस्त देवता ऋत में ही एकीभूत हो जाता है। इस मं से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋत का तन्तु लौकिक तथा पारलौकिक जगत दोनों ओर विस्तृत है। लौकिक जगत में उसका स्वरूप पुण्य–अपुण्य (नैतिक तथा अनैतिक) है तथा परलोक में ब्रह्म तथा साधारण कारणभूत ब्रह्म (स्वर्ग–नरक) है। इस प्रकार चारों स्वरूप में दो निषेधपरक तथा अन्य दो विधिपरक है। ऋत जो कि जगत का कारणभूत ब्रह्म कहा जाता है, उस ऋत ने विभिन्न दिव्यालौकिक, प्राकृतिक, इहलौकिक नियमों को बनाया है। वे नियम यान्त्रिक तथा वैयक्तिक दोनों प्रकार से जगत में व्याप्त है। उन नियमो का सभी यान्त्रिक तथा वैयक्तिक स्तर पर अनुगमन करते है।

निष्कर्ष

ऋत एक नैतिक नियम एवं कर्म है। यह नियम शुभ संकल्प वाला तथा इसमें स्थायित्व है। सूर्य भी इसी ऋत के कारण अंधकाररूपी शत्रु को नष्ट करता है तथा रश्मि समूह को फैलाता है, स्वयं अटल नियम रूप में स्थिर होकर संसार में सभी को प्रकाशित तथा गतिमान बनाता है। इस प्रकार इसके नियम में क्रमबद्धता है। इसका अनुसरण करने वाले देवता कभी इसका उल्लंघण नहीं करते है। वस्तुतः ऋत विश्व का नियामक एवं संचालनकर्ता है।

''असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा मृतम गमय'' असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। वेद की इन पंक्तियों के अर्थानुसार ऋत सत्

प्रकाशवान् तथ अमृत हैं देवता भी इसी ऋत के मार्ग का अनुसरण करते है। वे सत्य से युक्त है तथा सत्य और ऋत को बढाने वाले तथा जानने के कारण इनको ऋतावा ऋतावृधा ऋतज्ञा कहा गया है। वे देवता स्वकर्मो के माध्यम से मनुष्य को सत्कर्मों सद्विचार तथा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते है। व्यक्ति दैवीय शक्तियों पर विश्वास करता है वे देवता जिस नैतिकता से चलते उसी का वह भी अनुसरण करता है। देवता व्यक्ति को ऋत का अनुसरण तीन प्रकार से कराते है – स्वकर्माधिकार, कर्मो के अनुग्रह से, कर्म की गति।

वरूण देवता नैतिक देवता है वे मनुष्य को सब आध्यात्मिक, मानसिक तथ शारीरिक अनर्थो के पाप से छुडाते है। वे सत्यवक्ता को पुष्ट करते है तथा असत्य को पोशों से बांधते हैं।

संदर्भ

1. डॉ. दयाकृष्ण, पाश्चात्य दर्शन का इतिहास, पृ. 260।
2. जेतली, ईश्वर चन्द्र, पश्चिमीय आचार विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ. 170।
3. योग्य, ठीक, उचित, सत्य, गतिमान्, प्रयत्नशील, यज्ञ, सत्यनियम, ईश्वरीय नियम, मुक्ति, कर्मफल, मार्ग, उन्नति, रक्षण, अमरत्व नीरोगता, संपति, अनुकूल परिस्थिति।
4. स्पर्द्धने, ऐश्वर्ये, घृणायाम् इति कविकल्पद्रुम (भ्वादि–परंईयङ्.पक्षे आत्मगत्यर्थे सकं, अन्यार्थे अकं सेट्) शब्द कल्पद्रुम, पृ. 285।
5. परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
   यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त।। अथर्व. 2/1/1/5।